© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

काव्यशास्त्रों में अलंकारों का विवेचन

मयंक शेखर झा
एस0आर0एफ0
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

अलंकारशास्त्रों में 'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति निम्नरूप से प्रतिपादित की जाती है–

'अलङ्क्रियते अनेन इति अलङ्कारः'।

'अलङ्करोति वा काव्यम्, इति वा अलङ्कारः'।

अर्थात् जिसके द्वारा काव्य को सुशोभित किया जाता है अथवा जो काव्य को सुशोभित करता है, वह अलङ्कार कहलाता है। आचार्य दण्डी द्वारा प्रतिपादित अलङ्कार–लक्षण इसी आशय को प्रकट करता है, जो निम्नवत् है–

'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान् प्रचक्षते'।[1]

आचार्य वामन ने भी अपने काव्यालङ्कारसूत्रवृत्ति में उक्त तथ्य को स्वीकार किया है–

'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्। सौन्दर्यमलङ्कारः[2], इति।

अलंकार रसरूप काव्यात्मतत्त्व का उपकारक होता है, इसे आचार्य राजशेखर ने निम्नपंक्ति के माध्यम से स्वीकार किया है–

उपकारकत्वादलङ्कारः सप्तममङ्गमिति राजशेखरः'।

काव्यशास्त्र के भीष्मपितामह आचार्य भामह ने काव्य में अलंकार की सत्ता निम्नरूप से प्रतिपादित की है–

'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्'[3]।

---

1 काव्यादर्श, 2/1
2 काव्यलङ्कारसूत्रवृत्ति, 1/1–2
3 काव्यालङ्कार, 1/13

अग्निपुराणकार ने तो काव्य में अलङ्कार की अपरिहार्यता को निम्नरूप से प्रदर्शित किया है–

'अलङ्काररहिता विधवैव सरस्वती'[4]। इति।

उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट है कि काव्य में अलंकारों की सत्ता अपरिहार्य है तथापि काव्य की आत्मा अर्थात् जीवनाधायक तत्व रस के साथ उसका पोष्य–पोषक–भाव सम्बन्ध है, इस तथ्य को रसवादी आचार्यों ने अङ्ग–अङ्गीभावसम्बन्ध या उपकार्य–उपकारक भाव सम्बन्ध की संज्ञा दी है। उक्त आशय को आचार्य मम्मट ने भी निम्न कारिका के माध्यम से प्रकट किया है–

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः'[5]।।

आचार्य आनन्दवर्द्धन ने स्वरचित 'ध्वन्यालोक' नामक लक्षणग्रन्थ में रस के साथ अलङ्कारों का अङगाङ्गिभाव सम्बन्ध पूर्व में ही प्रतिपादित कर दिया था, जो निम्नवत् है–

'तमर्थमवलम्बन्ते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृताः।

अङगाश्रितास्त्वलङ्काराः, मन्तव्याः कटकादिवत्'[6]।।

अर्थात् रसादिरूप काव्यात्मतत्त्व के आश्रित रहने वाले धर्म गुण कहलाते हैं और अलंकार काव्य के अंगभूत शब्द तथा अर्थ के शोभाधायक (सौन्दर्याधायक) धर्म होते हैं। काव्य के सौन्दर्याधायक तत्त्व अलंकारों की अपरिहार्यता को कविराज विश्वनाथ ने स्वरचित 'साहित्यदर्पण' में निम्न कारिका के माध्यम से प्रदर्शित किया है–

'शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽदादिवत्'[7]।।

उपर्युक्त विवेचन से यह सुस्पष्ट होता है कि काव्य में अलंकार का महत्व होते हुए भी जीवनाधायक रसतत्व का प्रथम स्थान है। उक्त रसतत्त्व का धर्म गुण है, अतः धर्म–धर्मीभावसम्बन्ध

---

4 अग्निपुराण, 334/2

5 काव्यप्रकाश, 8/2

6 ध्वन्यालोक, 2/6

7 साहित्यदर्पण, 10/631

के कारण गुण का दूसरा स्थान है, क्योंकि काव्य में गुणों की उपस्थिति अपरिहार्य है, किन्तु काव्य में अलङ्कारों की काव्य–जीवितभूत रसतत्त्व के साथ उपकार्य–उपकारक अथवा अलङ्कार्य–अलङकारकभाव सम्बन्ध हाने के कारण उसकी अपरिहार्यता रसवादी आचार्यों के द्वारा प्रतिपादित नहीं की गई है, अतः काव्य में इसका तीसरा स्थान है। मम्मटाचार्य ने अपने काव्यलक्षण में **'सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि'**[8] लिखकर उक्त आशय को अभिव्यक्त किया है। अलंकार–सम्प्रदाय के **भामह, उद्भट, दण्डी, रुद्रट, जयदेवप्रभृति** आचार्यों ने काव्य में रस की सत्ता तो स्वीकार की है, किन्तु उसकी प्रधानता नहीं मानते हैं। उनके मत में काव्य का प्राणभूत अर्थात् जीवनाधायक तत्व अलङ्कार ही है। अलङ्कार विहीन काव्य की कल्पना वैसी ही है जैसे कोई पामर व्यक्ति उष्णताविहीन अग्नि की कल्पना कर ले। चन्द्रालेककार जयदेव का मम्मटाचार्य के काव्यलक्षण पर कटाक्षपरक निम्न पद्य अवलोकनीय है–

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।

असौ न मन्यते कस्यामदनुष्णमनलङ्कृती।।[9]

आचार्य जयदेव ने उपर्युक्त पद्य में प्रयुक्त सभङ्गश्लेषालङ्कार का प्रयोग करते हुए अपने पूर्ववर्ती रसवादी आचार्य मम्मट को सटीक उत्तर दिया है कि जो अलङ्कारविहीन शब्द और अर्थ को भी काव्य मानते हैं वे उष्णताविहीन अग्नि की सत्ता क्यों नहीं मानते?

इस प्रकार हम देखते हैं कि अलङ्कार सम्प्रदायवादी आचार्यों के मतानुसार काव्य के जीवनाधायक तत्त्व के रूप में अलङ्कार को ही सुप्रतिष्ठापित किया गया है तथा रस का रसवदलङ्कारों में अत्यन्त सहजतापूर्वक अन्तर्भाव कर देते हैं। उनके मत में रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वित् और समाहित ये चार प्रकार के रसवदलङ्कार माने जाते हैं। काव्यशास्त्र के भीष्मपितामह आचार्य भामह एवं उनके परवर्ती आलङ्कारिक आचार्य दण्डी ने इन रसवदलङ्कारों के भीतर ही रस का भी अन्तर्भाव कर दिया है, जो निम्नवत् है–

''रसवद्दर्शितस्पष्टशृङ्गारादिरसं यथा''[10]**।**

---

8 काव्यप्रकाश– सूत्रसंख्या–1

9 चन्द्रोलोक, पृष्ठ संख्या–9

"मधुरे रसवद्वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः"[11]।।

अलंकारों का सर्वप्रथम प्रयोग हमें आचार्य भरतमुनि विरचित 'नाट्यशास्त्र' में प्राप्त होता है। उन्होंने उपमा, यमक, रूपक तथा दीपक नामक चार अलंकारों का उल्लेख किया है। इसी क्रम में अग्निपुराण में 15 अलंकार, आचार्य वामनकृत काव्यालंकारसूत्र में 33 अलंकार, आचार्य दण्डीकृत काव्यादर्श में 35 अलंकार, भामहकृत काव्यालंकार में 39 अलंकार, रुद्रटकृत काव्यालंकार में 52 अलंकार, ध्वनिप्रतिष्ठापक समन्वयवादी आचार्य मम्मट विरचित 'काव्यप्रकाश' में 6 शब्दालंकार तथा 61 अर्थालंकार, आचार्य विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण में 84 अलंकार, जयदेवकृत चन्द्रालोक में 100 अलंकार, अप्पयदीक्षितकृत कुवलयानन्द में 124 अलंकार तथा पण्डितराज–जगन्नाथकृत रसगंगाधर में 180 अलंकारों का विवेचन है।[12] इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तरोत्तर अलंकार शास्त्रियों द्वारा अलंकारों की संख्या में वृद्धि दर्शायी गयी है।

प्रायः सभी आचार्यों का यह सर्वसम्मत मन्तव्य है कि शब्द तथा अर्थ काव्य के शरीर हैं। उस शरीर के शोभाधायक अर्थात् उत्कर्षाधायक तत्त्व का नाम ही अलंकार है। अलंकार का मूल तत्त्व अर्थात् आधार, शब्द एवं अर्थ ही है। जिस अलंकार में शब्द की प्रधानता होती है उसे हम शब्दालंकार कहते हैं तथा जिस अलंकार में अर्थ की प्रधानता होती है उसे हम अर्थालंकार कहते हैं। जिस अलंकार में शब्द एवं अर्थ दोनों के गुणों का युगपद् मिश्रण हो वह उभयालंकार कहलाता है।

शब्दालंकार तथा अर्थालंकार नामक भेद, शब्द के 'परिवर्तनसहत्व' या 'परिवतनासहत्व' के ऊपर निर्भर करता है। जहाँ शब्द का परिवर्तन करके उसका पर्यायवाचक दूसरा शब्द रख देने पर अलंकार की सत्ता नहीं रहती है, वहाँ यह समझना चाहिए कि उस अलंकार की उपस्थिति, उस शब्द–विशेष के कारण ही थी। इसलिए उसे 'शब्दालंकार' कहा जाता है। जहाँ शब्द का परिवर्तन करके कोई अन्य पर्यायवाचक शब्द रख देने पर भी उस अलंकार की सत्ता बनी रहती है,

---

10 भामह, काव्यालङ्कार, 3/6

11 दण्डी, काव्यादर्श, 3/51

12 संस्कृत निबन्धशतकम्, डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी, पृष्ठ संख्या–80

वहाँ अलंकार शब्दाश्रित नहीं, अपितु अर्थाश्रित होता है, इसलिए उसको 'अर्थालंकार' कहा जाता है। इस प्रकार जो अलंकार शब्दपरिवृत्ति को सहन नहीं करता वह शब्दालंकार कहलाता है और जो शब्दपरिवृत्ति को सहन करता है, वह अर्थालंकार होता है।[13]

इस प्रकार संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि भले ही अलंकार की स्थिति काव्य में जीवनाधायक न हो पर वह उत्कर्षाधायक तो अवश्य ही है। काव्यों में चारुत्ववर्धक तत्व अलंकार ही है, जैसा कि हमें विविध काव्यों के अवगाहन से भी उक्त तथ्य सुस्पष्ट रूप से प्रतीत होता है।

*****

[13] काव्यप्रकाश, सम्पादक–आचार्य विश्वेश्वर, पृष्ठ संख्या–400